निडर और जुझारु पत्रकार 'प्रेमचंद'

प्रो. इफ़्फ़त असग़र व अहमद रजा

सारांश :

प्रेमचंद के जीवन का लक्ष्य भारतीय जनता का उद्धार करना था। प्रेमचंद के विचार में भारत की आंतरिक और बाह्य समस्याओं को अंग्रेज़ सरकार की गुलामी में रहकर हल नहीं किया जा सकता था, इसलिए उन्होंने ब्रिटिश शासन का अंत आवश्यक समझा । ब्रिटिश विरोधी उनके जितने भी लेख (विशेषकर 'हंस' और 'जागरण' में) प्रकाशित होते थे, उनको पढ़कर आसानी से समझा जा सकता है कि यह कलम का सिपाही किस तरह निडर और बेबाक़ होकर अपनी कलम चलाया करता था। हालांकि ये युग पराधीनता का युग था। पत्रकारों पर कड़ी से कड़ी नज़र रखी जाती थी। बार-बार जुर्मान लगाए जाते थे, सजाएं दी जाती थी। अगर चार पैसे कमाकर पेट पालने का मसला होता तो प्रेमचंद कोई और व्यवसाय खोल कर पेट पाल सकते थे या अगर ब्रिटिश सरकार का खौफ होता तो 'सोजे वतन' की ज़मानत के बाद दुबारा ब्रिटिश विरोधी लेख या रचनाएं लिखना छोड़ सकते थे, लेकिन देश की पीड़ित जनता को देखकर उनका हृदय तड़प उठता था।

बीज शब्द : ब्रिटिश सरकार, हंस, जागरण, माधुरी, पत्रपत्रिकाएं–, स्वराज्य, शांति स्थापना, शोषण अत्याचा इत्यादि।

'हंस', 'जागरण' और 'प्रेस' पर बार–बार जुर्माने लगाए जाते थे लेकिन उनके विचारों में वही बेबाकपन, वही बेखौफी देखने को मिलती थी। वह अपने लेखों में ब्रिटिश सरकार को नर पशु, दरिंदे, कसाई, गिद्ध, दानव, नमक हराम, गीदड़, कुत्ता, कलंक, दोगली सरकार, डंडे बाज, दमनकारी, स्वार्थी, पागल सरकार, और न जाने क्या–क्या कह जाते हैं। "जब तक कसाईयों की भांति इंग्लैंड की निगाह भारत के मांस पर रहेगी, उस वक्त देश में न शांति होगी और न उन्नति।"[1] इसी तरह, "वह (भारत) एक मुर्दा देश होगा, जो केवल इसलिए जीता है कि गिद्ध (अंग्रेज़ सरकार) उसे नोच–नोच कर खा जाएं।"[2] एक और लेख में लिखते हैं, "शांति स्थापित करने के दो साधन है। एक तो मानवी है, दूसरा दानवी..... सरकार ने अपनें स्वभावानुसार मशीनगन (दानवी) से काम लेना ही उचित समझा।...दमन शासन का सबसे निकृष्ट रूप है और अंग्रेज़ों ने उसी का आश्रय लिया है।"[3] इस प्रकार की बेबाक लेखन शैली उनकी पत्रकारिता में आज भी शोभा बढ़ा रही है। इन्हीं बातों से चिढ़कर उन पर जुर्माने लगाए जाते थे। "लेकिन यहां इतना कह देना हम अपना कर्तव्य समझते हैं कि ऐसे वातावरण में जब कि हर एक संपादक के सिर पर तलवार लटक रही हो, राष्ट्र का सच्चा राजनैतिक विकास नहीं हो सकता। अधिकारियों के हाथ में इतना अख्तियार दे दिया गया है, कि कोई संपादक अफसरों की आलोचना करके सुख की नींद नहीं सो

सकता।"[4] प्रेमचंद के ब्रिटिश विरोधी लेखों में उनके बेबाक बयानों तथा उनकी लेखन शैली का कुछ अंश नमूने के तौर पर यहां उद्धृत किया जाता है-

उपर्युक्त कथनों को देखकर यह आसानी से समझा जा सकता है कि प्रेमचंद की कथनी और करनी में कोई भेद नहीं था और न ही उनके दिल में किसी का डर था। यह बेबाकी और सपाट बयानी जनता के दुःख–दर्द की कहानी थी जिसके लिए उन्होंने अपना सर्वस्व कुर्बान कर दिया था। कभी गैरों की कड़वी कसैली सुनकर, तो कभी बीवी के बार–बार कलम तोड़ देने और कागज़ फाड़ देने की धमकी सुनकर भी यह कलम का सिपाही अपनी आदत से बाज़ नहीं आता था। 'हंस' ने कभी मोती नहीं उगला, 'प्रेस' से भी कर्ज़ का पैसा तक नहीं निकल सका, 'जागरण' से भी नुकसान ही देखना पड़ा लेकिन देशोद्धर की भावना और ब्रिटिश विरोधी स्वर उनका कभी कम नहीं हुआ।

ब्रिटिश सरकार के प्रति उनकी लेखन शैली जिस प्रकार आक्रोश का रूप धारण कर लेती थी, वही शैली भारतीय शोषकों को संबोधित करते हुए भी होती थी। प्रेमचंद ने किसी को भी नहीं बख्शा। भारतीय जनता के शोषकों, चाहे वह अंग्रेज़ रहे हो या फिर भारतीय, उनकी आलोचना और आक्रोश का स्वर बनें हैं। भारतीय शोषकों में वकील, जमींदार, पूंजीपति और सांप्रदायिक नेता शामिल थे। एक ओर तो उन्होंने भारतीय शोषकों की निंदा की वहीं दूसरी ओर उन्होंने उन्हें भारतीय जनता का नेता बनने की वकालत भी की। प्रेमचंद यहां भी भारतीय शोषकों का हृदय परिवर्तन करते हुए दिखाई देते हैं। अपनी बात को कब और किस अंदाज़ में रखना चाहिए प्रेमचंद इससे भली भांति परिचित थे। भारतीय शोषकों को संबोधित करते हुए एक स्थान पर कहते हैं, "हिंदू हों, या मुसलमान जो अंग्रेजी राज्य में धन और अधिकार के सुख लूट रहे हैं, वे अंग्रेजी सरकार के परम भक्त है, और रहेंगे और रहना चाहिए। वे किसी के तो नमक हलाल बने रहें।"[5] इसी तरह भारतीय साम्प्रदायिक नेताओं को लक्ष्य करते हुए कहते हैं, "बात यह है कि हिंदू सभा और मुस्लिम लीग दोनों में ऐसे लोग भरे हुए हैं, जो या तो सरकारी नौकर या पेंशनर हैं। उनका मस्तिष्क नौकरियों और जगहों के सिवा कुछ सोच ही नहीं सकता। किसान और मजदूर के लिए उनके पास कुछ नहीं है।"[6]इसी तरह, "धर्म की संकीर्ण क्षेत्र के बाहर उनकी निगाह नहीं पहुंचती ; वह या तो हिंदू हैं, या मुसलमान ; हिंदुस्तानीपन का भाव उनसे कोसों दूर है। वे (भारतीय शोषक) लोग मौके की ताक में हैं।"[7] प्रेमचंद वकालत के पेशे को सबसे ज़्यादा विरोध करने वाले थे। वकीलों को लेकर कहते हैं, "आप (ब्रिटिश सहयोगी) शौक से वकालत करके मौज़ उड़ाएं, झूठे मुकदमे बनाएं और भोले–भाले गरीबों की गर्दन पर छुरी चलाएं, आप शौक से अपने होनहार पुत्रों को कालेजों में पढ़ाएं और उन्हें भी राजकीय पद दिलाकर या वकालत की सनद दिलाकर गरीबों की गर्दन को छुरी बनाएं, आप शौक़ से विलायती कपड़ों का रोज़गार करके सोने के महल खड़े करें, मगर आप इस कलंक को नहीं धो सकते कि आपने

देशोद्धार के ऐसे अच्छे मौक़े पर दगा किया, अपने स्वार्थ को देखा, जाति को न देखा।"[8] भारतीय शोषकों की आलोचना के समय उनकी लेखन शैली किस प्रकार ओज, क्रोध, आक्रोश और श्राफ का रूप धारण कर लेती थी, उसका कुछ नमूना निम्नलिखित प्रस्तुत किया जाता है।

जनमत को संगठित करने के लिए उपदेशात्मक शैली ही अधिक उपयुक्त होती है। किसी भी जाति का उद्धार उनमें जागरण और त्याग की भावना को पैदा करके ही किया जा सकता है। इसके लिए वक्ता अपनी शैली को भावात्मक और उपदेशात्मक बनाने की कोशिश करता है। उपदेश का तात्पर्य केवल धार्मिक उपदेश और गुरुमंत्र से ही नहीं होता बल्कि नसीहत, हित की बात कहने अर्थात् बताने से भी होता है। उपदेश का अर्थ है- शिक्षा, सीख, नसीहत, हित की बात का कहना, दीक्षा या गुरुमन्त्र। सदियों से पराधीनता की बेड़ियों में जकड़े होने के कारण भारतीय जनता की आत्मीयता इस हद तक दब चुकी थी कि वह देशोद्धार और आत्मनिर्भरता की भावना से बेज़ार हो चुकी थी। यही कारण है प्रेमचंद अपनी पत्रकारिता में भारतीय गरीब मजदूर जनता को गुरु की भांति मार्गदर्शन करते हुए दिखाई देते हैं। कभी–कभी उनकी लेखन शैली उपदेश का रूप भी धारण कर लेती है। एक स्थान पर भारतीय जनता को इन शब्दों में संबोधित करते हुए लिखते हैं, "हिंदुस्तान का उद्धार हिंदुस्तान की जनता पर निर्भर है। जनता में अपनी योग्यता के अनुसार यह भाव पैदा करना प्रत्येक स्वदेशवासी का परम धर्म है। स्वदेश तुम्हें संदेश दे रहा है कि तुम भी मनुष्य हो, तुमको भी ईश्वर के यहां से समान अधिकार प्राप्त है। तुममें भी उन्नति करने की, गौरवशाली बनने की शक्ति मौजूद है। उठो, उससे काम लो। यह आलस्य छोड़ो, हिम्मत मज़बूत करो और परमात्मा तुम्हारे सहायक होंगे।"[9] प्रेमचंद भारतीय गरीब–मजदूर जनता के प्रवक्ता थे। भारतीय शोषितों को जब वह संबोधित करते, तो अपनी वाणी से उनमें ओज भर देते थे। भारतीय शोषितों (किसान-मजदूर) के संबंध में उनकी उपदेशात्मक लेखन शैली का कुछ नमूना निम्नलिखित अंशों में देखा जा सकता है-

निष्कर्ष :

प्रेमचंद जैसे पत्रकार की भाषा और उनकी लेखन शैली के संबंध में इसके अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है कि उनके जैसा भारतीय जनता का हमदर्द समकालीन पत्रकारों में बहुत गिने चुने लोग ही हो सके हैं। उनकी सपाट और बेबाक बयानी और ओजपूर्ण लेखन शैली को देखकर उनकी वैचारिकता और विद्वता का अनुमान आसानी से लगाया जा सकता है। देश की दयनीय स्थिति ने ही प्रेमचंद को एक यथार्थ दृष्टि दी थी। उनके हृदय में भारतीय गरीब–मजदूर जनता का प्रेम भरा हुआ था। शोषकों को लेकर उनकी कलम सारी मर्यादाओं को तोड़ देती थी। देश की स्वाधीनता और क़ौमी एकता को स्थापित करने के लिए प्रेमचंद की

पत्रकारिता ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। ब्रिटिश भारत (1900–36 ई०) का कोई ऐसा पहलू नहीं है जिसे प्रेमचंद की पत्रकारिता में स्थान न मिला हो। वह देश की मूक जनता की वाणी थे।

प्रो. इफ़्फ़त असग़र
हिंदी विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय
अलीगढ़
iffatasgharamu@gmail.com
अहमद रजा
हिंदी विभाग (शोधार्थी)
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय